शोध मंथन Vol. XVII No.1 Jan.- Mar. 2026 ISSN: (P) 0976-5255 (e) 2454-339X, Impact Factor 8.889 (SJIF)
https://doi.org/10.31995/shodhmanthan.2026.v17i01.12

# परम्परागत शिक्षण की वर्तमान संदर्भ में विशेषताएं

प्राप्तिः 30.01.26
स्वीकृतः 05.03.26

12

**डॉ. देवेन्द्र कुमार**
असिस्टेंट प्रोफेसर, (शिक्षाशास्त्र विभाग)
आई टी ई कादराबाद
मोदीनगर
ईमेलः *drdevendrakumarnimesh@gmail.com*

**डॉ. प्रज्ञा बौध**
प्रवक्ता, (शिक्षाशास्त्र विभाग)
आई टी ई कादराबाद
मोदीनगर

**सारांश**

*प्राचीन भारतीय समाज में शिक्षा का स्वरूप सुव्यवस्थित और सुनियोजित था, जिसमें व्यक्ति के चारित्रिक, नैतिक एवं सामाजिक विकास के लिए विभिन्न प्रकार की शिक्षा प्रदान की जाती थी। व्यक्ति और समाज का आध्यात्मिक और बौद्धिक विकास शिक्षा के माध्यम से ही सम्मद माना जाता था। शिक्षा से ही व्यक्ति में ज्ञान उत्पन्न होता है। इत्तलिए ज्ञान को उत्पत्ति का आधार शास्त्र और विवेक को माना गया है। विद्या से मुक्ति प्रदान होती है तथा शिल्प में निपुणता प्राप्त करता है व्यक्ति के जीवन में विद्या ज्ञान का विशेष महत्व है। विद्या के बिना मनुष्य का व्यक्तित्व संकुचित और जीवन बोझिल तथा अंधकार के समान है। विद्या, व्यक्तिक तृतीय नेत्र के समान है जो उसे समस्त तत्वों के मूल को समझने में समर्थ करता है तथा उसे सही कार्यों की ओर अग्रसर करता है। ज्ञान के बिना जीवन और जगत के रहस्यों को जान पाना सम्भव नहीं है। व्यक्ति को वास्तविक ज्ञान की उपलब्धि विद्या द्वारा ही प्राप्त हो सकती है। समृद्धि और विशिष्ट वस्तुओं की प्राप्ति ज्ञान पर ही निर्भर रहती है। ज्ञान का प्रकाश व्यक्ति के अन्धकारमय जीवन को प्रकाशित कर देता है तथा व्यक्ति को सन्मार्ग का अवलोकन कराता है।*

**मुख्य बिन्दु**

*चारित्रिक, नैतिक सामाजिक विकास, आध्यात्मिक, बौद्धिक।*

जीवन में आने वाली समस्त बाधाएं एवं कठिनाइयां ज्ञान के कारण समाप्त हो जाती है। ज्ञान के बिना व्यक्ति नेत्रहीन व्यक्ति समान है जिसे कुछ दिखाई नहीं पड़ता। व्यक्ति के जीवन सम्बन्धी सिद्धान्तों और व्यवहारों को समझने में शिक्षा की भूमिका अग्रणी होती है। शिक्षा अतुलनीय है क्योंकि इससे शरीर और मन पवित्र व परिष्कृत हो जाता है। विद्या और ज्ञान की प्राप्ति से व्यक्ति श्रेष्ठ व उत्तम माना जाता है। माता पिता की तरह ज्ञान भी मनुष्य की रक्षा करती है। पिता के समान शुभकार्य में संलग्न करती है, पत्नी के समान दुःखों को समाप्त करती है और कल्पवृक्ष के समान प्रसन्नता प्रदान करती है। मानी गयी है। व्यक्ति का जीवन शिक्षा से समृद्ध एवं उसकी बुद्धि गुदृढ

होती है। व्यक्ति तुलनात्मक रूप से किसी व्यक्ति से उस स्थिति में बढ़ा होता है जब उसकी बुद्धि शिक्षा द्वारा तीव्र और उत्त्तच होती है। इसीलिए विद्या से हीन व्यक्ति को पशुवत माना गया है। ज्ञान समस्त सांसरिक सुखों की प्राप्ति ज्ञान के माध्यम से ही सम्भव से व्यक्ति अपना जीवन सार्थक बनाता है। ज्ञान के बिना व्यक्ति का जीवन सारहीन तथा निरर्थक रहता है। शिक्षा के संयोग से बुद्धि प्रखर, बोध क्षमता विकसित तथा विवेक स्पष्ट होता है। गया है। शिक्षा पर तो ब्राम्हण के लिए अत्रि का कथन है कि ब्राम्हण जन्म से यह ऐसे मार्ग का प्रदर्शन करती है कि व्यक्ति पथभ्रष्ट होने से बच जाता है तथा सही मार्ग का अनुसरण करके अपना इहलौलिक और पारलौकिक जीवन सुखमय बनाता है। प्राचीन भारत में आत्मज्ञान के साथ–साथ जगत का ज्ञान भी व्यक्ति के लिए अपेक्षित माना ब्राम्हण नहीं होता जब उसके पास कासा संस्कार होते है तब यह द्विज कहा सकता है। जो शारत्रों के अर्थ का व करता है वह वेदविद्ध अर्थात वेदों का ज्ञाता कहा जाता है उसके बचन पति करने वाले होते है भारतीय समाज में धर्म को जीवन पद्धति से जोडने का प्रयास किया जाता था। मनुष्य के जीवन में धार्मिक वृत्तियों का गरिमामय स्थान है जिसे व्यक्ति धर्म प्रवण होता है। इस प्रकार की भावना प्राचीन काल से चली आ रही है। विद्यार्थियों के जीवन में भक्ति और धर्म की भावना का आरोपण शिक्षा के माध्यम से होता है। आचीन काल में धर्म को बड़े आदर से देखा जाता था। प्रऋषि महर्षि पुरोहित आदि लोग शिक्षा का निर्धारण तथा शिक्षा देन का कार्य करते थे। अत्तएव इस काल की शिक्षा का मुख्य उद्देश्य ईश्वर भक्ति तथा धर्म के नियगों का कठोरता के साथ पालन करना था।

उक्त उद्देश्यों को पूरा करने के लिए विभिन्न सरकारों की व्यवस्था थी। ब्रम्हचारियों द्वारा संध्योपराना क्तों का अनुपालन तथा धर्म समन्वित उत्सव आदि का अनुगमन उनकी धार्मिक वृत्तियों के योगदान में उत्थान देते रहे है। जीवन के उत्थान और विकास के लिए आत्मविश्वास कारण होता है। आचार्य कुल में रहते हुए नैतिक नियम का पालन करना ब्रम्हचारी का व्रत था और अनुशासन का पालन करना भी एक कर्तव्य था। वस्तुतः छात्र के लिए साध्यवंदना, पूजा, पाठ, स्नान आदि आवश्यक थी। सत्यवचन को प्रमुख माना गया था और यह कहा जाता था कि सत्य में बोलने से सभी धमों का क्षय हो जाता है। शिक्षार्थी के विभिन्न निगम् धर्ममूलक, प्रवृत्तियों के विकास में सहायक होते है। इन्हीं नियमों के आधार पर विद्यार्थी लौकिक और परलौकिक जीवन को समझ पाने में सक्षम होता था। यह आध्यात्मिक जगत के बारे में जानने का प्रयास करता था तथा उसके निमित्त जीवन को तपस्या में संलग्न करताथा। अतः व्यक्ति के जीवन में सरलता अहिंसा और सत्य वचन अनिवार्य माने गये है क्योंकि धर्ममूलक, प्रवृत्तियां इन्हीं तत्वों से प्रेरित होती थी। व्यक्ति के चरित्र का उत्थान शिक्षा का दूसरा उद्देश्य था। इसके अन्तर्गत व्यक्ति नैतिक क्रियाएं सम्पन्न करता हुआ सन्मार्ग का अनुसरण करता था। चरित्र और आचरण का इतना बड़ा महत्त्व था कि समस्त वेदों का ज्ञाता विद्वान सच्चचरित्रता के अभाव में मानवीय नही था। अच्छा चरित व्यक्ति का आभूषण माना जाता था। आचार सम्पन्न और चरित्रवान व्यक्ति वन्दनीय तथा आचरणहीन व्यक्ति निन्दनीय माना जाता था। सत्कर्मों से ही चरित्र का उत्थान माना गया था। ये सत्कर्म नैतिक मूल्यों से ही संचालित होते थे। मनुष्य के आचरण और चरित्र को उन्नति करने का प्रयास किया जाता था। समाज के अन्य लोगों के साथ उसके अच्छे व्यवहार की प्रकृति उसके चरित्रोत्थान में सहायक तत्य थी। सहिष्णुता और सौहार्द सत्य निष्ठा और नैतिकता तथा सदाचार और आदर्श मनुष्य के चरित्र उत्थान के मौलिक तत्व थे। इसलिए

https://doi.org/10.31995/shodhmanthan.2026.v17i01.12

पण्डित वही माना जाता था जिसमें धर्म व चरित्र पाया जाता था। व्यक्तित्व निर्माण प्राचीन भारतीय शिक्षण व्यवस्था का महत्वपूर्ण पक्ष था। व्यक्ति निर्माण से तात्पर्य ऐसे संस्कार युक्त व्यक्तित्व से था जो देश एवं समाज के प्रति संदवेदनशील हो। शिक्षा के माध्यम से व्यक्ति के व्यक्तित्व का उत्कर्ष होता था। विभिन्न प्रकार के संयमों और नियमों से मनुष्य का जीवन सुव्यवस्थित होता था जिससे उसके, व्यक्तित्व का विकास होता था। शिक्षा के प्राप्ति से ही व्यक्ति विभिन्न कर्तव्यों का पालन कर सकने में सफल होता था। इससे उसके भीतर आत्मसंयम आत्मचितन, आत्मविश्वास, आत्मविश्लेषण न्याय प्रवृत्ति और आध्यात्मिक प्रवृत्ति का उदय होता था। आत्मविश्वास की भावना से ही व्यक्तित्व का विकास समुचित रूप से होता है। वैदिक काल में यह माना गया है कि शिक्षार्थी में आत्मविश्वास का होना उसके सर्वांगीण विकास का कारण था। अपने कर्मों और उत्तरदायित्वों को आत्मविश्वास पर सही ही ढंग से निभादित किया जा सकता था। इसलिए बम्हचारी में यह आत्मविश्वास जागृत कराया जाता था कि वह भावी जीवन की भंयकर कठिनाइयों में भी स्थिर मति सके। इसी विश्वास के साथ वह गुरू के संनिध्य में रहकर विभिन्न नियमों का पालन करता और अपने अद्भुत साहस का परिचय देता। भविष्य के संकटमय जीवन का अपने अनुकूल बनाने में उसका आत्मविश्वास ही उसका एक मात्र सहायक होता था। पाठ्यक्रम का स्वरूप एवं उसकी उपयोगिता स्वस्थ शिक्षा की पहचान है। प्राचीन भारत में आयुर्वेद विज्ञान का सबसे बड़ा केन्द्र तक्षशिला था। ईसा से 500 वर्ष पूर्व जब संसार में चिकित्सा शास्त्र की व्यवस्था नहीं थी उस समय यहां चिकित्साशास्त्र बहुत ही उन्नत अवस्था में था। जातक कथाओं से पता चलता है कि वहां के स्नातक मस्तिष्क के भीतर तक या पेट की आंतड़ियों का आपरेशन बड़ी सुगमटा से कर लेते थे। ऐसी अद्भुत जड़ी बूटियों का उन्हें ज्ञान था कि बिना जुलाब दिये ही केबल एक जड़ी सुधा देन से पेट स्वस्थ्य हो जाता था। विश्वविद्यालय या कालेज की शिक्षा से कहीं अधिक महत्वपूर्ण भारत में प्राचीन विद्वानों तथा पण्डितों की निजी, अपने घर चलने वाली पाठशालाएं थी। इस प्रकार की शिक्षा में याराणसी ने हजारों वर्ष से विशेषज्ञता प्राप्त कर ली थी और इसी तरह देश भर में विद्वान पण्डित ऐसे केन्द्र चलाते थे। ऐसी पाठशालाएं चलाने वाले छात्रों से कुछ लेते नहीं थे बल्कि शासक लोग ऐसे विद्वानों के भरण पोषण के लिए गांव देते थे, जिसे दक्षिण में अग्रहार कहते थे। ऐसी पाठशालाओं में ब्रम्हमुहूर्त में पाठ आरम्भ होता था। वारणसी में ही शिक्षा की 31 शाखाओ का वर्णन मिलता है। तक्षशिला से प्रति छात्र से पूरी शिक्षा के लिए 1000 मुबा उसे भी भरती कर लेते थे, शिक्षा प्रदान की जाती थी शर्त यह थी जब वह कमाने लगे तब यह गुरु दक्षिणा अर्पित करे।

**संदर्भ**


1. अग्नि पुराणरू कलकत्ता, 1957।
2. अथर्ववेद रघुवीर, एम०ब्लूफिील्ड का अंग्रेजी अनुवाद, आक्सफोर्ड, 1897।
3. अमरकोश, अमर सिंह धीर स्वामी की टीका सहित, ओरिण्टल बुक एजेन्सी, पूना, माहेश्वरी व्याख्या, भण्डार ओरिएण्टल रिसर्च इंस्टीट्यूट, पूना 19071
4. अष्टाध्यायी निर्णाय सागर प्रेस, 1929।
5. दीपवंश सम्पाकद ओल्डेन वर्ग, लन्दन 18791

6. जातक संहिता ई०बी० कविल द्वारा सम्पादित, संस्करण 15 लन्दन 1957 ।
7. भागवत गीत गीता प्रेस, गोरखपुर।
8. महानाष्य, पंतजलि वेदव्रत द्वारा सम्पादित, झज्जर (रोहतक) 1960।
9. चतुर्वेदी, परशुराम सन्त काव्य संग्रह।
10. स्वामी रामचन्द्र शास्त्रः सन्त रैदास और उनका काव्य, हरिद्वार।
11. श्रीवास्तव, आशीर्वादी लालरू मध्यकालीन भारतीय संस्कृति।
12. शर्मा, ओमप्रकाश सन्त साहित्य की लौकिक पृष्ठभूमि।
13. सिंह नाहर, रतिभानु भक्ति
14. सिंह, विजय प्रताप मध्यकालीन भक्ति आंदोलन, वाराणसी।
15. शुक्ल, सावित्री संत साहित्य की सामाजिक तथा सांस्कृतिक पृष्वभूमि।
16. शर्मा, सुमन मध्यकालीन भक्ति आंदोलन का सामाजिक विवेचन।